इकाई 1 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

लक्ष्य और उद्देष्य

1.2 सामाजिक अनुसंधान का अर्थ

1.3 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के उद्देष्य

1.4 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के प्रेरित कारक

1.5 सामाजिक विज्ञान बनाम भौतिक विज्ञान

1.6 सामाजिक अनुसंधान की मूल मान्यताएँ

1.7 सामाजिक अनुसंधान की विषयवस्तु

1.8 आँकड़ों के स्रोत

1.9 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की कठिनाइयाँ

1.10 सारांष

1.11 बोध प्रष्न

1.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

एक चिन्तन–प्रिय व्यक्ति के लिए ज्ञान की प्राप्ति सदैव एक मुख्य प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है। ऐसे व्यक्ति की बौद्धिक चेतना और जानने की लालसा उतनी पुरानी है जितनी स्वयं शोधवृत्ति। मनुष्य ने अब तक के सम्पन्न हुए विकासीय क्रम को बृहत्तर रूप से समझने के लिए अपने अतीत में बार–बार झाँकने का प्रयास किया है। अपनी प्राप्त जानकारी के तथ्यों का पुनःनिरीक्षण और उसकी पुनर्व्याख्या की है ताकि वह जो जानता है, उसकी पुष्टि हो और यदि संभव हो तो नयी जानकारी, नयी व्याख्याएँ और नए सिद्धांत भी बन पाएँ। हमें यह जानना चाहिए कि वर्तमान की समस्त जानकारी अतीत में निहित होती है तथा भविष्य में बनाने वाली छवि हम अपने वर्तमान में देखते हैं। मनुष्य अपने वर्तमान को समझने के लिए अतीत का ध्यानपूर्वक अध्ययन करता है और इस प्रक्रिया में अपने अध्ययन और उससे जुड़ी व्याख्याओं को वैज्ञानिक रूप से समझने–परखने का प्रयास करता रहता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति द्वारा मानवीय गतिविधियों, घटनाओं व प्रविधियों की पुनः व्याख्या की जाती रही है, उन्हें नए दृष्टिकोणों से पुनः देखा जाता रहा है, उनके रूप–स्वरूप को नई दिषा देने के यत्न भी किए जाते रहे हैं। वस्तुतः मानव मस्तिष्क द्वारा तथ्यों और तत्वों को समझने व अध्ययन करने की प्रक्रिया को साधारणतया, हम "अनुसंधान" अर्थात "षोध" कहते हैं। याद रहे कि अनुसंधान अर्थात् शोध की संकल्पना मनुष्य के उन प्रयासों को जोड़कर समझी जा सकती है जो उसके द्वारा अपने उद्‌गम, उसके विकास और उसके वातावरण को ओर बेहतर ढंग से समझने में सहायक सिद्ध होती हैं तथा मानवीय अतीत के विकास में हुए सभी पहले के चरणों को केवल व्यक्त ही नहीं करती अपितु, उन्हें समझाती भी हैं।

ऐसा समझा जाना स्वाभाविक है कि शैक्षिक ज्ञान की प्राप्ति में शोध अर्थात् अनुसंधान की भूमिका महत्वपूर्ण रही होगी। मानव जाति को अपने विविध पहलुओं में अपने वर्तमान तक के चरण तक लाने में अनुसंधान का योगदान कम से कम अद्वितीय रूप से सहायक रहा होगा। इससे हमारी बौद्धिक प्रवृत्ति तीव्र होती रही है और इस प्रक्रिया में ज्ञान वृद्धि में नए–नए सिद्धांत जुड़ते गए हैं। हम इतिहास का अध्ययन अपनी शैक्षिक रूचि के कारणवष करें या न करें, परंतु अपने बहुआयामी विकास को समझने तथा उसका सम्पूर्ण एवं उपर्युक्त अध्ययन के लिए इतिहास का अध्ययन अवष्य करना चाहिए। हम अनुमान लगा सकते हैं कि अपने मूल उद्भव के आरंभिक चरणों में व्यक्ति को अपने जैविक अस्तित्व के आर्थिक के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मानव–षास्त्रीय पहलुओं की जानकारी नगण्य हो रही होगी। परंतु जैसे–जैसे मनुष्य की बौद्धिक–चेतना बढ़ती गई, वैसे–वैसे उसकी जिज्ञासा का भी विकास होता चला गया; उसने अपने चारों ओर के वातावरण को समझना आरंभ कर दिया; प्रकृति में हो रहे परिवर्तनों पर नज़र रखनी शुरु कर दी; अपनी समस्याओं व अपने सम्बन्धों को समझना शुरु कर दिया। इन सभी का मिला–जुला परिणाम यह हुआ कि धीरे–धीरे मनुष्य की बौद्धिक प्रक्रिया को एक नया रूप व एक नयी दिषा मिलने लग गई जिसे हम "अनुसंधान" अर्थात् "षोध" का नाम दे सकते हैं।

लक्ष्य और उद्देष्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रकृति के बारे में समझ सकेंगे;
- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान/शोध में शोधकर्त्ता की समस्याओं के बारे में जान सकेंगे; और
- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान/शोध में प्राप्त आँकड़ों और उनके विभिन्न स्रोतों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 सामाजिक अनुसंधान का अर्थ

सामाजिक अनुसंधान की परिभाषा को पी.वी.यंग के शब्दों में इस प्रकार बताया जा सकता हैः "हम सामाजिक अनुसंधान की परिभाषा को एक ऐसी क्रमिक पद्धति के रूप में समझ सकते हैं जो तार्किक और सुनिष्चित तरीकों के नए तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों की पुनःपरीक्षा और उनमें विद्यमान अनुक्रमों, अन्तर्संबंधों, कारणों सहित व्याख्याओं तथा उन्हें संचालित करने वाले नियमों का विश्लेषण करती है।" रेडमैन पीटर का कहना है कि सामाजिक अनुसंधान "नए ज्ञान की प्राप्ति का एक क्रमबद्ध प्रभाव है।" स्टीफंसन की धारणा है कि सामाजिक अनुसंधान तथ्यों, अवधारणाओं अथवा चिन्हों का परिचालन है जो ज्ञान के प्रमाणन को ज्ञान के सहायक यंत्र रूपी सिद्धांत एवं उससे संबंधित प्रचलन पर परखता है। एफ.ए.ऑग ने सामाजिक अनुसंधान की एक अन्य परिभाषा दी हैः "आँकड़े सफल हो अथवा न हो, यह प्राप्त ज्ञान में कुछ जोड़े या न जोड़े। इतना ही काफ़ी है कि इसके उद्देष्य नए ज्ञान अथवा नए ज्ञान में, एक नई दिषा देने से संबंधित हैं।" क्लीफोर्ड मुडी ने अनुसंधान के विषय में कहा है : "इसमें समस्याओं को परिभाषित व पुनःपरिभाषित करना, संकल्पनाओं को अथवा उनके समाधानों को निर्मित करना; आँकड़ों का अवलोकन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन करना, निगमनों को निकालना तथा निष्कर्षों पर पहुँचना अथवा उन्हें निर्मित संकल्पनाओं पर प्रमाणित करना आदि सम्मिलित होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं में सामाजिक अनुसंधान के निम्नलिखित लक्षण बताए जा सकते हैं:

1) सामाजिक अनुसंधान का सम्बन्ध सामाजिक तथ्यों से है। यह समाज के सदस्यों के रूप में लोगों के व्यवहारों का, उनकी भावनाओं का, उनकी अनुक्रियाओं और भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में उनकी अभिवृत्तियों का भी अध्ययन करता है।

2) सामाजिक अनुसंधान नए तथ्यों का आविष्कार करता है तथा पुराने तथ्यों के सत्यापन की पुष्टि करता है। निःसंदेह, प्रत्येक प्रकार के विज्ञान का उद्देष्य नए तथ्यों की खोज, नए अन्तर्संबंधों का निर्माण तथा उनसे संबंधित नए नियमों की खोज़ करता है। परंतु, इसके साथ–साथ, गतिषील विज्ञानों में पुरानी अवधारणाओं के सत्यापन की आवष्यकता निरंतर ही बनी रहती है। एक, अनुसंधान की प्रविधियों में सत्यापन को परखा जा सकता है; दूसरा, बदलते हालात में तथ्यों के स्वरूप में भी बदलाव आ सकते हैं और इस कारण बदलते तथ्यों को बदलती परिस्थितियों में उनका सत्यापन किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञानों में उपर्युक्त दोनों कारकों को लेकर नए तथ्यों को खोज़ा जा रहा है तथा पुरानी अवधारणाओं में सुधार/परिवर्तन किया जा रहा है।

3) सामाजिक अनुसंधान लोगों की गतिविधियों के बीच अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। यह जानना रुचिकर होगा कि लोगों के बीच घटी ज़टिल गतिविधियाँ अपने आप में बिना किसी कारण अथवा किसी नियम के अंतर्गत होती हैं अथवा स्वयं सामाजिक व्यवस्था के कारण होती हैं। ऊपरी नज़र डालने से ऐसा लगता है कि मानवीय व्यवहार की अनुक्रियाएँ उनकी मनोवृत्तियाँ तथा उनके हाव–भाव आदि सामाजिक व्यवस्था के कारण और निर्मित तो हुई असंभव सी नज़र आती हैं। यदि ध्यान से विश्लेषणीय गतिविधियों का वैज्ञानिक विश्लेषण, तथा उनकी पारस्परिक तुलनाएँ तथा तार्किक व्याख्याएँ की जाएँ तो सत्य को तलाषना कठिन नहीं होगा। क्योंकि हम यह देख भी पाएँगें कि अधिकांष गतिविधियाँ अपने आप में नहीं होतीं, अपितु सुनिष्चित नियमों, स्वतः व्यवस्था और सार्वभौमिक नियमों के अंतर्गत ही होती हैं। सामाजिक अनुसंधान का मुख्य उद्देष्य ऐसे नियमों/कानूनों की खोज करना है जो मानवीय समाज में हुए विकास को समझने में सहायक सिद्ध होती हो।

अतः हम देखते हैं कि उपर्युक्त दी गई सामाजिक अनुसंधान की प्रत्येक परिभाषा इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि लोगों द्वारा समाज से सम्बन्धित समस्याओं के विषय में ज्ञान को बढ़ावा देना सामाजिक अनुसंधान का लक्ष्य है। वैबस्टर इंटरनेषनल शब्दकोष में सामाजिक अनुसंधान को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "तथ्यों अथवा सिद्धांतों को प्राप्त करने के मार्ग सामाजिक अनुसंधान तक तार्किक तथा विवेचनात्मक अन्वेषण अथवा परीक्षण – कुछ सुनिष्चित तथ्यों की प्राप्ति के लिए प्रमाणित खोज़।" दूसरे शब्दों में, सामाजिक अनुसंधान नए तथ्यों को खोज़ने तथा पुराने तथ्यों का सत्यापन भी करता है। यह तथ्यों को ही नहीं तलाषता अपितु यह समाजिक लोगों के व्यवहारों को समझने व उन्हें वर्गीकृत करने में सहायता अधिक करता है।

1.3 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के उद्देष्य

सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के उद्देष्यों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है: **एक**, शैक्षिक उद्देष्य, **दूसरा**, उपयोगीय उद्देष्य।

किसी अन्य प्रकार के अनुसंधान की भाँति, सामाजिक अनुसंधान का शैक्षिक उद्देष्य ज्ञान की प्राप्ति है। सभी प्रकार के अनुसंधानीय कार्य ज्ञान की लालसा के लिए उत्तरदायी होते हैं, भले ही उस स्थिति में

कोई भौतिकवादी प्रेरणा हो अथवा न हो। अतः सामाजिक अनुसंधान का प्रारंभिक लक्ष्य मानवीय समाज, तथा उसकी कार्यषैली की विभिन्न सामाजिक कृतियों से जुड़े तथ्यों का वास्तविक ज्ञान अर्जित करना होता है।

सामाजिक अनुसंधान का दूसरा उद्देष्य, स्वरूप में, उपयोगीय है। पी.वी. यंग के अनुसार "सामाजिक अनुसंधान का प्राथमिक अथवा तत्कालीन तथा सुदूर उद्देष्य सामाजिक जीवन को समझना तथा उसके द्वारा सामाजिक व्यवहार पर अधिक मजबूती प्राप्त करना है।" मानवीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक त्रुटियों जैसे हत्याओं, आत्महत्याओं, चोरी–डकैतियों, झगड़ों, युद्धों आदि से ग्रस्त है। अब यह स्पष्ट रूप से विदित हो चुका है कि इन सामाजिक त्रुटियों अथवा इनमें से अधिकांष त्रुटियों की जड़ में स्वयं समाज का संगठन तथा उसकी कार्यषैली होती है। ऐसी घटनाएँ और परिघटनाएँ अपने आप एक–दो नहीं होतीं। क्योंकि कोई चोर, डाकू अवश्य जुड़ी या हत्यारा जन्म से नहीं होता, अपितु समाज में ही रह कर बनता है। यदि हम उन बुराइयों को समाप्त कर दें जो इन्हें बनाते हैं तो समाज इन त्रुटियों से मुक्त हो जाएगा तथा समाज में चिरस्थायी सुख–षान्ति को स्थापित करना भी कठिन नहीं होगा।

सामाजिक अनुसंधानों के प्रयासों ने यह सिद्ध कर दिया है कि कामचलाऊ एवं छोटे–छोटे उपचारात्मक उपायों से समाज की इन त्रुटियों को समाप्त नहीं किया जा सकता। जेल, पुलिस और दंड आदि के प्रयोजनों के होते हुए भी समाज में अपराध तो होते ही रहते हैं। आवष्यकता इस बात की है कि हमें इन त्रुटियों की जड़ में विद्यमान कारणों को समाप्त करना होगा जो ऐसे अपराधों को जन्म देते हैं। इन सबके लिए हमें मानवीय समाज को समझना होगा तथा उसकी कृतियों का गहन अध्ययन करना होगा। सामाजिक अनुसंधान का बड़े–से–बड़ा भाग ऐसी जानकारियों को प्राप्त करने के उद्देष्य में लगाना आवष्यक होगा।

इस चरण पर एक तथ्य को स्पष्ट कर दिया जाना अनिवार्य है। सामाजिक अनुसंधान के उपयोगीय उद्देष्य का यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक अनुसंधान ने सभी सामाजिक त्रुटियों का उपचार निकालना है। इस संबंध में पी.वी. यंग द्वारा दी गई सतर्कता ध्यान–योग्य है। वह कहती हैं, "सामाजिक अनुसंधान का संबंध रोगात्मक समस्याओं से उस सीमा तक है जहाँ तक वह मानवीय व्यवहार एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व की परियोजनाओं और विसंगठनीय प्रवृत्तियों की सामाजिक प्रक्रियाओं पर प्रकाष डालता हो।" वह यह भी बताती है कि "सामाजिक अनुसंधान सामाजिक नियोजन अथवा सामाजिक इंजीनियरिंग के व्यावाहरिक तथा तत्कालीन उपायों से संबंधित नहीं है और न ही किन्हीं सुधारात्मक एवं चिकित्सीय उपचारों से। इसका सम्बन्ध पूरे पर्यावरण तथा परिष्कृत प्रषासकीय प्रक्रिया से भी नहीं है और न ही सामाजिक सुधारों से।"

उपर्युक्त दो परस्पर विरोधी विचारों में कुछ भ्रान्तियाँ दिखाई दे रही हैं। ध्यानपूर्वक विश्लेषण से स्पष्टता अपने आप झलकती है। सामाजिक विसंगठन के कारणों को दो भागों में बाँटा जा सकता हैः एक, ऐसे कारण जो मानवीय प्रकृति अथवा मूल सामाजिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं; दूसरा, ऐसे कारण जो दूषित सामाजिक नियोजन अथवा दोषपूर्ण प्रषासकीय व्यवस्था के कारणों से उभरते हैं। सामाजिक अनुसंधान पहली प्रकार के कारणों की विषयवस्तु है। दूसरे प्रकार के कारणों को सामाजिक सर्वेक्षणों से जोड़ा जा सकता है। एक ठोस उदाहरण से इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है। स्कूली बच्चों में तेज़ी से बढ़ते उपचार का ध्यान सरकार की ओर दिलाने वाले सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि ऐसे उपचार का मुख्य कारण दूषित स्कूली प्रषासकीय व्यवस्था होती हैः अध्यापकों और अभिभावकों की बदसलूकी अथवा बुरी संगत–मण्डली आदि। प्रषासकीय सुधारों द्वारा उपचार के प्रचलन को कम किया जा सकता है, यद्यपि इसे पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता। अपेक्षाकृत गहराई से किए गए

अध्ययन के फलस्वरूप हम इस समस्या की जड़ में निहित कारणों की पहचान कर सकते हैं: मनोवैज्ञानिक कुण्ठाएँ अथवा बुराई की ओर बढ़ता प्रलोभन इस श्रेणी में आते हैं। सामाजिक अनुसंधान मानवीय प्रकृति के इन मूल विशेषकों को जानने एवं समझने का प्रयास करती है ताकि इस त्रुटि को जड़ से ही नष्ट किया जा सके।

1.4 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के प्रेरित कारक

पी.वी. यंग ने सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के चार प्रेरित कारक बताए हैं:

1) अज्ञान के प्रति जिज्ञासा

यंग ने अपने शब्दों में, जिज्ञासा को मानव मस्तिष्क के एक मूल प्रवृत्ति बताया है तथा एक लंबी प्रेरक शक्ति जो मनुष्य को उसके परिवेषों का समन्वेषणा करती है।" यह मानव जाति की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है: एक छोटा बच्चा भी जिन तत्वों को देखता है, उनको जानने की खोज़ करने का अपने तरीकों से प्रयास करता है। इसी प्रकार की जिज्ञासा एक वैज्ञानिक की सामाजिक तत्वों के पीछे कार्यरत कारकों को खोज़ने का प्रयत्न करता है। जब वह व्यक्ति की सामाजिक ज़टिलता एवं भिन्न–भिन्न पद्धतियों को देखता है, तो वह व्यक्ति का अध्ययन तो करता ही है साथ ही उनके महत्व को समझने का प्रयास भी करता है।

2) व्यापक सामाजिक समस्याओं के कारण उन पर पड़े प्रभावों को समझने की इच्छा

पी.वी. यंग के अनुसार, "किसी भी अन्य वैज्ञानिक प्रयास के कारण – प्रभावी सम्बन्धों की खोज़ एक निरंतर बने रहने वाला कारक है।" सामाजिक प्रक्रियाओं को बनाने वाले कारकों की आधी –अधूरी अवधारणाओं से जुड़े संदेहों तथा अनिष्चितताओं को अनुसंधान के फलस्वरूप ही दूर कर सकते हैं। लोग केवल घटनाओं के विवरण की जानकारी ही नहीं प्राप्त करना चाहते हैं अपितु वह उन घटनाओं के कारणों को भी जानना चाहते हैं।

3) उचित और अप्रवेक्षित परिस्थितियों का प्रकटीकरण

कई बार व्यक्ति को विचित्र और कठिन सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक साधारण व्यक्ति ऐसी समस्याओं के प्रति भावनात्मक दृष्टि से प्रेरित होता है। परन्तु एक सामाजिक वैज्ञानिक आवेग में आकर इनके कारणों को समझने का प्रयास भी करता है। इन मूल समस्याओं के लिए स्थायी समाधान को भी तलाषता है। सामाजिक वैज्ञानिकों को अधिकांष परिस्थितियों में इन समस्याओं तथा उनके विस्तार में जाकर इनके मूल कारणों के अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया है।

4) खोज और मौलिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए नई वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की खोज़ और पुरानी प्रणालियों के परीक्षण की इच्छा

सामाजिक अनुसंधान का एक अन्य प्रेरित कारण यह है कि सामाजिक अनुसंधान लाभयुक्त एवं मौलिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए नई वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की खोज़ करने में सहायक सिद्ध होता है। साथ ही, अनुसंधान पुरानी प्रणालियों के परीक्षण के कार्य को भी निरंतर आगे बढ़ाता है।

अनुसंधान सामाजिक तत्वों के शोध तक का सत्य मात्र ही नहीं है; यह प्रविधियों व पद्धतियों की भी खोज़ करता है जो सामाजिक अनुसंधान के प्रयोग में लाई जाती है। सामाजिक समस्याओं से संबंधित बेहतर तरीकों की प्रविधियों को अनुसंधान के लिए तलाषा जाता रहा है। हाल के समय में गणनात्मक

अथवा सांख्यिकीय पद्धतियों का सामाजिक अनुसंधान में प्रयोग किया गया है ताकि अनुसंधान कार्य को अपेक्षाकृत और अधिक सुनिष्चित तथा गणितीय रूप दिया जा सके।

1.5 सामाजिक विज्ञान बनाम भौतिक विज्ञान

शुरु में ही यह स्पष्टतया समझ लिया जाना चाहिए कि सामाजिक अनुसंधान का स्वरूप भौतिक विज्ञानों के अनुसंधान से अधिक भिन्न होता है। जहाँ तक शुद्ध विज्ञानों का सम्बन्ध है, उनमें नियंत्रित प्रयोगषाला स्थितियों का अस्तित्व सम्भव होता है। द्वितीय, भौतिक विज्ञानों में कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध का अस्तित्व भी होता है। एक और कारक की उपस्थिति भी भौतिक विज्ञानों में देखने को मिलती है, वह यह है कि भौतिक विज्ञानों के उत्पाद (Products) की विशेषताओं और उनके व्यवहार की अनुभूति की जा सके।

दूसरी ओर, सामाजिक विज्ञानों का स्वरूप बिल्कुल अलग होता है। ऐसे विज्ञानों का संबंध जीवित मनुष्यों से होता है जिनका स्वभाव/मिज़ाज़ विष्वसनीय नहीं होता। व्यवहार, आदतें, दृष्टिकोण एवं सोच–विचार की पद्धतियाँ स्थान–स्थान पर न केवल भिन्न होती हैं, अपतु सामाजिक एवं व्यक्तिगत रूप में भी अलग–अलग होती हैं। अतः सामाजिक विज्ञान के इन पात्रों के लिए कोई एक जैसे निष्कर्ष एवं एकरूपीय दृष्टिकोण बनाना/निकालना कठिन है। यहीं कारण है कि सामाजिक अनुसंधान के अंतर्गत भिन्न–भिन्न पद्धतियों व दृष्टिकोणों/उपागमों का अनुसरण किया जाता है। आजकल यह तर्क दिया जाता है कि मानवीय व्यवहार की ज़टिलता के बावजूद भी ऐसे व्यवहारों के लिए समाज में किसी शैली/पैटर्न को देखा जा सकता है जिसका अर्थ यह है कि मानवीय व्यवहार में यथोचित भविष्यवाणियाँ संभव हो सकती हैं। ऐसी भी अवधारणा व्यक्त की जाती है कि सामाजिक तत्व इस कारण ज़टिल होते हैं कि उनके बारे में हमारा ज्ञान विकसित नहीं होता। जैसे–जैसे हमारा ज्ञान विकसित होता जाएगा, वैसे–वैसे इन तत्वों की ज़टिलता अपनी सरलता की और बढ़ती जाएगी। बी. ए. लुण्डबर्ग के शब्दों में, "जैसे–जैसे हमारा परिवर्तित ज्ञान बढ़ता है, वैसे–वैसे हम विभिन्न सम्बन्धित परिवर्त्यों के प्रभावों को समझने लगते हैं, तब सामाजिक प्रघटनाओं के विषय में हमारी भविष्यवाणी अधिकाधिक सही होना संभव होने लगती है।''

सामाजिक अनुसंधान से सम्बन्धित एक और कारक यह भी है कि जहाँ प्राकृतिक विज्ञानों में किन्ही सामूहिक व्यवहार का कोई प्रभाव नहीं होता, वहाँ सामाजिक अनुसंधान में सामूहिक व्यवहार का विशेष प्रभाव होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि व्यक्ति जब समूह से अलग होता है, उसका व्यवहार उस स्थिति से भिन्न होता है जब वह समूह का सदस्य होता है। समूह की सदस्यता व्यक्ति की सामन्जस्य की क्षमता बढ़ा देती है। एक शोधकर्ता को सामूहिक व्यवहार और नेतृत्व पैटर्न (जब व्यक्ति समूह के सदस्य के रूप में व्यवहार करते हैं) का गंभीरता से अध्ययन करना पड़ता है।

सामाजिक और भौतिक अनुसंधानों में एक अन्य भेद भी स्पष्टता से दिखाई देता है। अमुक अध्ययन–योग्य सामाजिक तत्व को अप्रत्यक्षीय रूप से परंपराओं, रुढ़ियों एवं मूल्यों के द्वारा ही समझा या समझाया जाता है। व्यक्तियों द्वारा ऐसे तत्वों में आत्मपरकता अधिक तथा वस्तुपरकता कम होती है। भिन्न–भिन्न लोग ऐसे मूल्यों को भिन्न–भिन्न रूपों से अभिव्यक्त करते हैं और इस कारण समाज में इन मूल्यों के विषय में कोई एक रूपीय मानदंड बनाना/निकालना कठिन होता है। परीक्षण योग्य तत्वों/पात्रों के विषय में भौतिक विज्ञानों में सदैव समरूपता होती है जबकि सामाजिक विज्ञानों में अधिकांषतः विषमता देखने को मिलती है।

भौतिक विज्ञानों में प्रयोगषाला–नियंत्रण स्थिति का अस्तित्व होता है जबकि सामाजिक विज्ञानों में ऐसा संभव नहीं होता। कहने का भाव यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों में परीक्षण के लिए प्रयोगषालाएँ होती हैं तथा शोधकर्ता का प्रयोग/परीक्षण करने वाले तत्व/उपकरणों का नियंत्रण होता है। सामाजिक विज्ञानों में ऐसी सुविधाएँ नहीं होती हैं। सामाजिक अनुसंधान में कारण को प्रभाव से अलग करना कठिन होता है। सामाजिक विज्ञान में कारण तथा प्रभाव एक साथ चलते हैं तथा दोनों एक–दूसरे पर उत्तरदायी होने का कार्य करते हैं जैसे बेरोज़गारी और निर्धनता। बेरोज़गारी निर्धनता का कारण भी हो सकती है तथा उसका प्रभाव भी। ठीक उसी प्रकार, निर्धनता बेरोजगारी का कारण भी बन सकती है और उसका प्रभाव/परिणाम भी। दूसरी ओर, भौतिक/प्राकृतिक विज्ञानों में कारण–प्रभाव का संबंध प्रत्येक प्रकार की अमुक स्थिति में पाया जाता है।

अतः यह समझा जा सकता है कि सामाजिक अनुसंधान का स्वरूप भौतिक अनुसंधान के स्वरूप से भिन्न होता है। दोनों प्रकार के अनुसंधानों की अपनी–अपनी समस्याएँ हैं जो एक–दूसरे से भिन्न हैं। सामाजिक अनुसंधान के स्वरूप से जुड़ी समस्याएँ अधिक हैं तथा बड़ी हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन समस्याओं के लिए कोई समाधान नहीं है अथवा यह समाधान से परे है। जैसे–जैसे व्यक्ति और समूह के व्यवहार के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बढ़ेगा, वैसे–वैसे अनुसंधान के उपकरण भी विकसित होते रहेंगे तथा इसके साथ समस्याओं से जुड़ी हमारी पद्धतियाँ व प्रविधियाँ भी विकसित होती जाएँगी। आज भौतिक अनुसंधान में भी अपेक्षाकृत अधिक परिषुद्धता है परंतु निकट भविष्य में ऐसी परिषुद्धता सामाजिक अनुसंधानों में भी संभव हो सकती है। समय के साथ और अधिक सामाजिक सिद्धांत विकसित हो सकते हैं।

1.6 सामाजिक अनुसंधान की मूल मान्यताएँ

सामाजिक अनुसंधान पर वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग कुछ मूल विशेष मान्यताओं पर आधारित है:

1) **कारण–प्रभाव संबंध का अस्तित्व–** सामाजिक अनुसंधान के एक आधार के रूप में स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न प्रकार की सामाजिक गतिविधियों/कृतियों में कारण–प्रभाव का अस्तित्व होता है। कारण सदैव एक जैसे प्रभावों/परिणामों को बनाते हैं अथवा पैदा करते हैं और यदि यह समझ लिया जाता है कि अमुक कारण अमुक त्रुटियों को बनाते हैं तो हम ऐसे कारणों को दूर कर उनसे जुड़ी सामाजिक त्रुटियों को प्रभावी ढंग से दूर कर सकते थे। उदाहरण के लिए यदि हम जानते हैं कि सामाजिक अपराध के कारणों में निर्धनता तथा नैराष्य आदि हो सकते हैं तो हम इन कारणों को दूर कर सामाजिक अपराधों को घटित होने से रोक सकते हैं। दूसरे शब्दों में, फिर यह कहा जा सकता है कि जहाँ निर्धनता व निराष्य होते हैं तो वहाँ सामाजिक अपराधों की संभावना बढ़ सकती है। फलस्वरूप सामाजिक अपराधों की रोक के लिए निर्धनता व निराष्य को दूर किया जाना आवष्यक बन गया है।

2) **सामाजिक गतिविधियों/कृतियों में अनुक्रमता/कानून–नियमों का अस्तित्व** – सामाजिक गतिविधियों/कृतियों की एक अन्य मान्यता यह बताई जा सकती है कि ऐसी गतिविधियाँ/कृतियाँ संयोगवष नहीं घटतीं, बल्कि इनके पीछे कुछ कारण/प्रवृत्ति/तंत्र आदि होते हैं। यदि ऐसे कारण/प्रवृत्ति/तंत्र आदि का पता हो तो हम भविष्य में उनसे होने वाले सामाजिक तत्वों के विषय में भविष्यवाणी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हमें यह जानकारी हो कि एक देष की जनसंख्या एक अमुक दर से बढ़ रही है तो आने वाले किसी भी वर्ष में उस देष के लिए इस प्रकार की दर के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

3) **अनासक्ति अध्ययन की संभावना** – यद्यपि एक शोधकर्ता समाज का सदस्य होता है तथा उस तथ्य पर जिसकी वह जाँच कर रहा है, उससे जुड़ा होता है, फिर भी वह उसे अलग रखकर उसके अध्ययन को संभव बना सकता है। उसके अध्ययन में उसकी रुचियाँ/भावनाएँ/सोच आदि अलग रखकर प्रयोग की जा सकती हैं। यद्यपि ऐसा होना कठिन अवष्य होता है, परंतु असंभव नहीं होता।

4) **आदर्षात्मक रूप का अस्तित्व –** समाज में लोग एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न नहीं होते। लोगों की समरूप वर्गों में कल्पना की जा सकती है। किसी भी अमुक वर्ग को किसी आदर्ष रूप (जहाँ कहीं भी ऐसे वर्ग का अस्तित्व हो) के अनुरूप देखना उस वर्ग को आदर्ष रूप के समान बनाया जाना संभव हो सकता है। अप्रवासी लोगों को एक आदर्ष वर्ग के रूप में देखा जा सकता है जो अपनी समरूपता की प्रवृत्तियों को व्यक्त कर सकते हैं। कहने का भाव यह है कि लोगों में जहाँ विषमय रूप होते हैं, वहाँ समरूपीय प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। समाज की समरूपीय प्रवृत्तियों की खोज़ करना तथा उनके माध्यम से समाज को आदर्ष रूप देना सामाजिक अनुसंधान का प्रयास हो सकता है।

5) **प्रतिनिधात्मक प्रतिदर्ष/नमूने की संभावना –** मान्यता यह है जो उपर्युक्त के साथ मिलती–जुलती है। ऐसा माना जाता है कि किसी अमुक समूह से एक प्रतिदर्ष/नमूना को उस समूह का प्रतिनिधात्मक मानते हुए यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रतिदर्ष संपूर्णता का रूप है और इस कारण हम इकाई/प्रतिदर्ष के आधार पर संपूर्ण समूह के विषय में निष्कर्ष निकाल लेते हैं। "कुछ" के आधार पर "सम्पूर्णता" का अध्ययन/मानवीय समाज अति विषाल है और प्रत्येक व्यक्ति का अध्ययन लगभग असंभव होता है। अतः सामाजिक शोधकर्ता प्रतिदर्ष प्रविधि के आधार पर एक प्रतिदर्ष को "प्रतिनिधि" मानकर संपूर्ण समूह का अध्ययन करता है तथा उस आधार पर अपने निष्कर्ष निकालता है।

1.7 सामाजिक अनुसंधान की विषयवस्तु

सामाजिक अनुसंधान का विषयवस्तु क्षेत्र समाज की भाँति ही विस्तृत है, विशेषतया समाज की संचालन–क्रिया अथवा उसकी प्रत्येक संस्था के अन्वेषण के संदर्भ में। कुल मिलाकर, सामाजिक अनुसंधान के विषयक्षेत्र को तीन बड़े भागों में बाँटा जा सकता है:

मौलिक अनुसंधान

व्यावहारिक अनुसंधान

अर्ध–सामाजिक अनुसंधान

मौलिक अनुसंधान

मौलिक अनुसंधान को विषुद्ध अर्थात सैद्धान्तिक अनुसंधान भी कहा जाता है। मौलिक अनुसंधान का सम्बन्ध सामाजिक विज्ञानों के मूल सिद्धांतों से है। ऐसे अनुसंधान नए सिद्धांतों की खोज़ और पूर्व स्थापित सिद्धांतों के सत्यापन हेतु किए जाते हैं। इस प्रकार के अनुसंधान की आवष्यकता इस कारण होती है कि समाज में नई समस्याएँ उभरती रहती हैं तथा उनके फलस्वरूप नई प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं जिनसे पुराने सिद्धांतों से हमें संतोषजनक जवाब नहीं मिलते। सामाजिक तथ्यों की गतिषील प्रकृति पहले के सिद्धांतों का नई उभरती परिस्थितियों में परीक्षण की आवष्यकता की माँग करती रहती है और इस क्रम में बदलते हालात में नए सिद्धांतों के समावेष से पूर्णता प्राप्त की जाती

रहती है। सामाजिक अनुसंधान में नए सिद्धांतों का आना इसलिए भी स्वाभाविक हो जाता है क्योंकि समय के साथ–साथ विश्लेषण की नई पद्धतियों एवं प्रविधियों में भी सुधार होता रहता है तथा इन नए उपकरणों के प्रयोग से न केवल अनुसंधान के नए तरीकों का लाभ उठाया जा सकता है, बल्कि सामाजिक संस्थाओं के संगठन और कार्य संचालन के लिए नए मौलिक तथ्यों के आविष्कार की संभावना भी बढ़ जाती है।

व्यावहारिक अनुसंधान

व्यावहारिक अनुसंधान का सम्बन्ध मौलिक अनुसंधान के परिणामों को सामाजिक समस्याओं पर लागू किए जाने से सम्बन्धित होता है। अतः इसका सम्बन्ध सामाजिक रोगोपचार अथवा सामाजिक इंजीनियंरिंग से होता है। उदाहरण के लिए, एक ग्रामीण समाज में नेतृत्व की शैली, एक अमुक कबीले के सामाजिक रीति–रिवाजों अथवा उनके स्वास्थ्य स्थिति एवं सामाजिक गतिषीलता आदि के अध्ययन ऐसे ही व्यावहारिक अनुसंधान के दृष्टांत कहे जा सकते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान सामान्यतया सामाजिक सर्वेक्षणों के रूप में देखे जा सकते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान तथा मौलिक अनुसंधान में मुख्य अंतर यह है कि मौलिक अनुसंधान मानवीय समाज के संचालन के निर्देषकों के मूल सिद्धांतों से संबंधित हैं जबकि व्यावहारिक अनुसंधान तत्कालीन समस्याओं से अधिक संबंधित होता है। मौलिक सिद्धांतों की प्रयोगात्मक क्षमता अपेक्षाकृत व्यापक होती है जबकि व्यावहारिक अनुसंधान के सिद्धांत अपनी प्रयोगात्मक क्षमता में संकीर्ण होते हैं। मौलिक और षुद्ध अनुसंधान एक ऐसे आधार के रूप में कार्य करते है जिसपर व्यावहारिक अनुसंधान का ढाँचा बनाया जा सकता है।

अर्ध–सामाजिक अनुसंधान

यह एक अन्य प्रकार की अनुसंधान प्रक्रिया है। हमें यह याद रखना चाहिए कि सभी सामाजिक विज्ञान अपनी सीमाओं में एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। स्वाभाविक है कि इस पारस्परिक सम्बन्धित–क्रिया से अनेक समस्याएँ भी पैदा होती होंगी जिन्हें हम सीमावर्ती समस्याएँ कह सकते हैं। एक व्यावहारिक अनुसंधान की ऐसी सभी विज्ञानों को अर्ध–सामाजिक अनुसंधान की विषयसूची का हिस्सा बनाया जा सकता है। सामाजिक–आर्थिक, सामाजिक–मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक–मानवषास्त्रीय रूप के अनुसंधानों को हम इसी श्रेणी में सुनिष्चित कर सकते हैं। शुद्ध रूप के व्यावहारिक अनुसंधान और अर्ध–सामाजिक अनुसंधान में भेद विषयवस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है न कि उपकरण और प्रविधियों के प्रयोग पर और न ही मौलिक सिद्धांतों इत्यादि पर।

1.8 आँकड़ों के स्रोत

सामाजिक विज्ञान के लिए आवष्यक आँकड़ों के भिन्न–भिन्न स्रोत होते हैं। पी.वी.यंग ने ऐसे स्रोतों को दो समूहों में श्रेणीबद्ध किया हैः (1) दस्तावेज़ी स्रोत, (2) क्षेत्रीय स्रोत। दस्तावेज़ी स्रोतों में प्रकाषित एवं अप्रकाषित एकत्रित की गई सामग्री सम्मिलित की जाती हैं। क्षेत्रीय स्रोतों में सप्राणीय लोग, विद्वान, वैज्ञानिक, शोधकर्ता, नेतागण, जिन्होंने सामाजिक समूहों के साथ कार्य किया हो अथवा जिन्होंने सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया हो – ऐसे लोगों की सामाजिक समस्याओं के विषय में उनके विचारों, मतों एवं अनुभवों से प्राप्त सलाह सुझाव लिए जाते हैं।

दस्तावेज़ी स्रोतों में पहला स्थान विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा लिखी रचनाओं को दिया गया है। यह रचनाएँ दो प्रकार की हैं। पहली श्रेणी में हम उन रचनाओं को शामिल करते हैं जो किन्हीं विशेष प्रकार के सिद्धांतों की बात करती हैं जैसे डारविन द्वारा प्रतिपादित जीवीय सिद्धांत। दूसरी श्रेणी में उन रचनाओं को सम्मिलित किया जाता है जो किसी तत्व/तथ्य का वर्णन करती हैं – उद्देष्य यह होता है कि

तत्व/तथ्य का मात्र वर्णन हो, न कि सिद्धांत विशेष की समीक्षा और न ही उसका समर्थन। इतिहास पर लिखी गई रचनाएँ, पर्यटन से संबंधित पुस्तकें/ग्रंथ, तथा आत्मकथाएँ आदि सभी इसी प्रकार की रचनाओं की श्रेणी में आती है; विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाषित सरकारी तथा ग़ैर–सरकारी सर्वेक्षण एवं आँकड़े आदि भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किए जा सकते हैं। पहली प्रकार की रचनाओं का सैद्धान्तिक महत्व है जबकि दूसरी प्रकार की रचनाएँ जानकारी के रूप में होती हैं।

अमुक रूप के विशेष अनुसंधान में प्रकाषित आँकड़ों/तथ्यों का बहुत कम महत्व होता है। सामान्यतया ऐसे अनुसंधान के लिए आवष्यक सूचना–सामग्री उपलब्ध ही नहीं होती और यदि उपलब्ध भी हो तो वह आंषिक, पुरानी, बेजोड़–तोड़ वाली होती है। शोधकर्ता को तो स्वयं ही अपनी आवष्यकता की सूचना आदि सामग्री तथा एकत्रित करनी पड़ती है। अनेक स्रोतों से प्रत्यक्ष रूप की सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। यदि तथ्यों/तत्वों का प्रेक्षण संभव हो, तो उनसे प्राप्त आँकड़ों–सूचनाओं को विष्वसनीय समझा जा सकता है। परंतु किन्हीं तथ्यों/तत्वों का प्रेक्षण उपलब्ध नहीं होता या कुछ का स्वयं प्रेक्षण करना भी संभव नहीं होता – जैसे व्यक्ति के विचार, उसकी प्राथमिकताएँ एवं कुछ सामाजिक प्रतिबंधों के अंतर्गत बाहर के लोगों को अवलोकन की आज्ञा नहीं दी जाती (जैसे विवाह से जुड़े रिष्ते–नाते)। ऐसे सभी मामलों में सूचनाकर्ता को प्रष्नावली एवं साक्षात्कार द्वारा ही सूचना–सामग्री प्राप्त हो सकती है। यदि अन्वेषण का क्षेत्र सीमित हो तो शोधकर्ता द्वारा स्वयं सूचना सामग्री एकत्रित की जाती है और यदि अन्वेषण का क्षेत्र व्यापक हो तो क्षेत्रीयकर्ता की सहायता ली जा सकती है।

सूचना सामग्री के विभिन्न स्रोत निम्नलिखित हैं:

1) दस्तावेज़ी स्रोत

1) ***रचनाएँ :*** विभिन्न विचारकों के अपने द्वारा लिखी गई नई रचनाओं में अपने विचार एवं सिद्धांत बताते हैं। एक शोधकर्ता द्वारा इन रचनाओं का अध्ययन इसलिए आवष्यक होता है ताकि वह यह जान सके कि सम्बन्धित विषय पर लोगों द्वारा पहले हुए उसी प्रकार के अनंसधान क्या–क्या रहे हैं तथा उन से प्राप्त किस प्रकार के निष्कर्ष मिले हैं। ऐसे अध्ययनों से शोधकर्ता को प्राप्त सूचनाओं के लिए पुनः मेहनत नहीं करनी पड़ती और साथ ही, उसे प्राप्त सूचनाओं से स्पष्टीकरण का लाभ भी उपलब्ध होता है। शोधकर्ता को ऐसे अध्ययन के अभाव में सम्बद्ध विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए समय लगाना पड़ सकता है।

2) ***सर्वेक्षणों की रिपोर्ट:*** सरकारी या ग़ैर–सरकारी संगठनों द्वारा समय–समय पर सामाजिक समस्याओं से संबंधित अनेक प्रकार के सर्वेक्षण होते रहते हैं। एक सामाजिक शोधकर्ता के लिए ऐसे सर्वेक्षणों के प्रतिवेदन खासे उपयोगी एवं सामग्री प्रदान करने में सहायक होते हैं। यह अलग बात है कि एक शोधकर्ता को ऐसे प्रतिवेदनों से सम्बन्धित सूचना या सामग्री की विष्वसनीयता परखने हेतु उस संस्था के विषय में तथा अनुसंधान में लगाए गए समय और किए गए अन्वेषण की उपयुक्तता आदि को ध्यान में रखना चाहिए।

3) ***संस्मरण:*** संस्मरण, आत्मकथाएँ, जीवनगाथाएँ, पत्र आदि कई बार सामाजिक विषयों पर विशेष प्रकाष डालते हैं। कई लोगों द्वारा दिन–प्रतिदिन की उनके साथ घटनाओं/परिघटनाओं के रोज़ लिखे गए विवरण, यद्यपि गोपनीय होते हैं। अनेक सामाजिक समस्याओं से जुड़ी सूचनाओं का विष्वसनीय स्रोत होते हैं। ऐसे लेखों–प्रलेखों का अपना सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक महत्व होता है।

4) ***यात्रा–वर्णन:*** मानवषास्त्र में यात्राओं का वर्णन विशेष महत्व रखता है। अफ्रीका तथा संसार से दूर के क्षेत्रों में यात्रियों द्वारा बताए गए वहाँ के समाज व लोगों के दिए गए उनके

रीति–रिवाज़ों वृतान्त सामाजिक शोध तथा मानव–षास्त्रीय अध्ययनों में काफ़ी सहायक सिद्ध हुए हैं।

5) ***ऐतिहासिक विवरणः*** इतिहास से हमें सामाजिक अनुसंधान के लिए काफ़ी सूचना व सामग्री मिल जाती है। एक ऐतिहासिक विवरण प्रायः दो प्रकार का होता हैः (i) सामान्य इतिहास, (ii) विशेष एवं अमुक तत्व/तथ्य का इतिहास। काम्पटे ने स्वयं बताया है कि ब्रिटिष सामाजिक शास्त्री ऐतिहासिक अथवा दस्तावेज़ों विवरण से काफ़ी कुछ लेते थे। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि कोई भी सामाजिक संस्था विकास–क्रम का फल होती है तो हमें अनेक विकसित समाजों के ऐतिहासिक विवरण से तथा अल्पविकसित समाजों की सूचना एवं सामग्री पर अध्ययन और अनुसंधान के लिए काफ़ी कुछ मिल सकता है।

6) ***सरकारी प्रकाषित आँकड़ें :*** अधिकांष देषों में सरकारों द्वारा नियमित रूप से विभिन्न सामाजिक तथ्यों/आँकड़ों को संकलित करने का कार्य समय–समय पर होता रहता है। इन तथ्यों/आँकड़ों का सम्बन्ध स्वास्थ्य, जनसंख्या, षिक्षा, रोज़गार, अपराध आदि से होता है। सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा उनके अपने उद्देष्यों के लिए ऐसे आँकड़ों/तथ्यों के प्रयोग की आवष्यकता पड़ सकती है तथा वह ऐसे आँकड़ों का प्रयोग भी करते भी रहते हैं। ऐसे आँकड़ें/तथ्य अपनी विष्वसनीयता के लिए इस दृष्टि से मूल्यवान होते हैं कि उनके स्रोतों की पक्षपातरहित प्रकृति पर कोई प्रष्न–चिन्ह भी नहीं लगाता।

7) ***अन्य अ–प्रकाषित अभिलेखः*** काफ़ी–कुछ अ–प्रकाषित सामग्री सरकारी क्षेत्रों तथा वैयक्तिक अभिलेख में हमें दबी मिलती है। यदि ऐसी सामग्री किसी व्यक्ति विशेष को मिल जाती है तो यह काफ़ी लाभकारी सिद्ध हो सकती है। ऐसी सूचनाओं/आँकड़ों का मिलना तथा शोध क्रिया में इस प्रकार की सामग्री का प्रयोग किया जाना अपने आपमें महत्वपूर्ण पहलू हैं।

2) क्षेत्रीय स्रोत

उपर्युक्त आँकड़ों/तथ्यों के अप्रत्यक्ष स्रोतों के अतिरिक्त हम कुछ क्षेत्रीय और प्रत्यक्ष स्रोतों का भी वर्णन कर सकते हैं जो सामाजिक अनुसंधान के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे क्षेत्रीय स्रोत निम्नलिखित हैंः

1) ***प्रत्यक्ष अवलोकनः*** इस पद्धति के अनुसार, एक शोधकर्ता स्वयं तत्वों/तथ्यों का निरीक्षण कर आवष्यक सूचनाएँ एकत्रित करता है। अवलोकन कार्य प्राकृतिक स्थलीय वातावरण में भी हो सकता है अथवा एक परीक्षण के रूप में भी किया जा सकता है। यदि अन्वेषण का विषयक्षेत्र छोटा है, तो शोधकर्ता स्वयं ही अवलोकन कार्य करता है और यदि विषय–संबंधी तथ्य की प्रकृति इतनी व्यापक हो कि क्षेत्रीय अन्वेषण आवष्यक हो तो शोधकर्ता क्षेत्रीय–कर्ताओं की सहायता ले सकता है। उस स्थिति में यह आवष्यक बन जाता है कि क्षेत्रीय–कर्ताओं के सही मानकीकरण तथा निरीक्षण की व्यवस्था अवष्य की जानी चाहिए।

2) ***सूचकों द्वारा प्राप्त प्रष्नावलीः*** यदि तथ्य/तत्व कुछ इस प्रकार के हों कि अवलोकन करना सम्भव न हो सके अथवा अवलोकन करने वाले की उपस्थिति न हो पाए, तब केवल सूचना प्राप्त करने का एक ही रास्ता रह जाता है और जो होता है, साक्षात्कार। साक्षात्कार द्वारा सूचना या तो सूचक के साथ सीधा संपर्क करने पर प्राप्त हो सकती है या उसे कुछ प्रष्नों का उत्तर देने के लिए कहा जा सकता है। साक्षात्कार या तो एक कहानी के रूप में हो सकता है या कुछ प्रष्नों के उत्तर के रूप में हो सकता है।

3) ***साक्ष्यों से प्राप्त प्रश्नावली:*** इस पद्धति का प्रयोग समितियों व आयोगों द्वारा होता है। इस पद्धति के अंतर्गत एक समिति लोगों से सूचना प्राप्त करने के लिए संपर्क नहीं बनाती, अपितु उन लोगों से पूछताछ करती है जिन्हें सम्बन्धित विषय पर ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसे लोगों से जो साक्षात्कार द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है, वह साक्ष्यों से प्राप्त सूचना होती है। उदाहरणतया, जब हम श्रम से संबंधित सूचना प्राप्त करना चाहते हैं तो हम श्रम नेताओं, कर्मचारियों तथा श्रम विशेषज्ञों के साथ संपर्क करते हैं। समाज सेवा से संबंधित सूचनाओं/आँकड़ों की प्राप्ति समाजसेवकों से उपलब्ध कराना उपयोगी होता है।

1.9 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की कठिनाइयाँ

सामाजिक समस्याएँ विशेष ज़टिल होती हैं और यदि हम समाज की वास्तविक रूप में उन्नति चाहते हैं तो हमें इन समस्याओं की सही रूप से पहचान करनी होगी। परंतु समस्या इतनी सरल और सीधी नहीं है जितनी दिखाई पड़ती है। सामाजिक अनुसंधान के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं। जो कि निम्नलिखित हैं।

1) ***अच्छे अनुसंधानकर्ता की खोज़ करने की समस्या:*** किसी भी प्रकार का सफल अनुसंधान तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि अनुसंधानकर्ता स्वयं ईमानदार नहीं होता। सामाजिक अनुसंधान में अच्छे सामाजिक शोधकर्ता को तलाषना काफ़ी कठिन है। एक अच्छे शोधकर्ता के पास मन–मस्तिष्क दोनों से जुड़े गुण होने चाहिए। उसे अपने पूर्वाग्रहों को अपने शोध से अलग रखना चाहिए। उसे अपने कार्य जिस कार्य में वह लगा हुआ है के प्रति समर्पित होना चाहिए। मुष्किल यह है कि ऐसे अनुसंधानकर्ता को तलाषना कठिन है जो पूरी लगन व पूरे जोष के साथ अपने कार्य को करता है। हम प्रायः यह षिकायत सुनते हैं कि अनुसंधानकर्ता झूठ–मूठ व बनी बनाई सूचना–सामग्री प्राप्त कर लेते हैं तथा सही व स्वयं आँखों–देखी व वास्तविक सामग्री प्राप्त करने का कष्ट नहीं करते।

2) ***सूचना सामग्री एकत्रित करने की समस्या:*** सामाजिक अनुसंधान की एक अन्य समस्या सूचना सामग्री प्राप्त करने से संबंधित होती है। एक अनुसंधानकर्ता कई प्रकार की सूचना एकत्रित करता है। प्रायः देखा गया है कि लोग अनुसंधानकर्ताओं से सहयोग नहीं करते। या तो लोगों की अनुसंधान में रुचि नहीं होती या उनका संबद्ध विषय से कुछ लेना–देना नहीं होता। प्रायः रहस्यों को बताने में वह कोई औचित्य नहीं समझते। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अनुसंधानकर्ता कोई सरकार से जुड़ा व्यक्ति/कर्मचारी होता है जो प्राप्त सूचनाओं का दुरुपयोग कर सकता है। अधिकांष परिस्थितियों में अनुसंधानकर्ता को वैसे लोग ही नहीं मिलते जो उसे सम्बन्धित विषय पर सूचना सामग्री दे सकते हैं क्योंकि शोधकर्ता स्वयं एक सामान्य व्यक्ति होता है जिसके अपने पूर्वाग्रह होते हैं, वह सूचनाओं/सामग्री को कुछ दबाने का अथवा उन्हें बढ़ा–चढ़ाकर बताने का प्रयास करता है और यह दोनों ही सम्बद्ध उद्देष्य की पूर्ति नहीं कर पाते।

3) ***अन्य लोगों और दूसरों पर निर्भरता:*** सामाजिक अनुसंधान की एक अन्य समस्या अन्य लोगों और दूसरों पर निर्भरता है। एक अनुसंधानकर्ता स्वयं सब कुछ नहीं कर सकता। उसे अनेकों साथी, अनुसंधानकर्ताओं को अपने साथ कार्य में लगाना पड़ता है। साथ ही, अनुसंधानकर्ता को दूसरे लोगों से सूचना सामग्री एकत्रित करनी पड़ती है जो सूचनाएँ प्रदान करने के लिए तैयार नहीं होते और अपना सहयोग भी न्यूनतम स्तर तक व्यक्त करते हैं। लोगों को अनुसंधानकर्ता के लिए समय ही नहीं होता अथवा वह उसे अपना समय देने के लिए तैयार नहीं होते। प्रायः वह अनुसंधानकर्ता व उसके साथी अनुसंधानकर्ताओं को गंभीरता से नहीं लेते जितनी गंभीरता से

शोधकर्ता अपने कार्य को लेते हैं। अनुसंधानकर्ता को तो अपने आँकड़ों/तथ्यों के विश्लेषण, व्याख्या तथा सारणीयन के लिए अन्यों पर निर्भर रहना होता है। जिससे अनुसंधानकर्ता के लिए उसके उद्देष्य तथा कार्य के प्रति गंभीरता अनुसंधान कार्य के लिए पर्याप्त नहीं होता।

4) ***आँकड़ों और आँकड़ों के विश्लेषण की समस्याः*** आँकड़ें एकत्रित कर लेने मात्र से सामाजिक अनुसंधानकर्ता की समस्या का अंत नहीं हो जाता। एक अनुसंधानकर्ता को अपने निष्कर्षों के लिए आँकड़ों की व्याख्या पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रायः यह देखा गया है कि आँकड़ों का विश्लेषण आँकड़ाकर्ता के लिए उसकी आवष्यकताओं, सुविधाओं व अभिवृत्तियों के अनुरूप करते हैं। मुष्किल इस बात की भी है कि हमें अनुसंधान–प्रक्रिया में ऐसे विश्लेषणकर्ता भी नहीं मिलते जो पक्षपातरहित होकर आँकड़ों/तथ्यों का विश्लेषण कर सकें।

5) ***प्रष्नावली की समस्याः*** यदि एक अनुसंधानकर्ता प्रष्नावली की सहायता से किसी समस्या की खोजबीन कर रहा है तो तब प्रष्न पूछे जाने वाले प्रष्नों को बनाने की आवष्यकता पड़ती है। अनुसंधानकर्ता को प्रष्नावली बनाकर प्रष्नों के उत्तरों को सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूपों में पूछना पड़ता है। स्पष्ट है कि इन प्रष्नों में ऐसे प्रष्न नहीं पाएँगें (जो अनुसंधानकर्ता और सूचना के बीच संचारण अंतराल छोड़ दें) – जहाँ पूछा हुआ प्रष्न कुछ हों और दिया जाने वाला उत्तर कुछ और। इसी प्रकार, कई बार प्रष्नों की बनावट ऐसी होती है कि आँकड़ों/तथ्यों की व्याख्या तथा विश्लेषण से संबंधित पर्याप्त सूचनायें प्राप्त नहीं हो पाती।

6) ***सामान्यीकरण की लालसाः*** प्रायः देखा गया है कि अनुसंधानकर्ता और अनुसंधता अपने निष्कर्षों को सामान्यीकरण का चोला पहनाने का प्रयास करते हैं जो वस्तुतः ठीक नहीं होती। वह भूल जाते हैं कि लोगों में आदतों/व्यवहारों का भिन्नताएँ होती हैं, उनकी सामाजिक परिस्थितियों में अन्तर होता है, उनके वातावरण में विशेष भेद होता है – स्वयं समाज एक–दूसरे से अनेक दृष्टियों से अलग होते हैं तथा एक अनुसंधानकर्ता दूसरे अनुसंधानकर्ता से भी अलग होता है। इन सबके चलते सामान्यीकरण की लालसा अनुसंधान के लिए उपयुक्त नहीं होती।

1.10 सारांष

इस इकाई के निष्कर्ष के रूप में यह बताना अपेक्षाकृत विशेषतया उपयुक्त है कि सभी प्रकार का अनुसंधान हमें ऐसा आधार प्रदान करे जिस पर हम अपने कार्य को प्रारम्भ कर सकें। सामाजिक विज्ञान अनुसंधान का अपना व्यापक विषय क्षेत्र है। जो विकासषील देष, जैसे भारत के लिए स्वयं महत्व रखता है। परंतु सामाजिक विज्ञान तभी कारगर सिद्ध हो सकता है यदि हमारे पास अपने अनुसंधानकर्ता हों जो उन्हें उनको दिए गए कार्य के प्रति अनिवार्यता तथा उत्तरदायित्व को महसूस करें या निभा सकें।

1.11 बोध प्रष्न

1) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रकृति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

2) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान द्वारा महसूस की जाने वाली अनुसंधानकर्ता की कठिनाइयाँ कौन–सी होती हैं?

3) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के आँकड़ों/तथ्यों के विभिन्न स्रोतों का विवेचन कीजिए।

1.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गुडे, विलियम जे. तथा पाल के., हाट, *मैथड्स इन सोषल रिचर्स,* मैकग्रा–हिल, सिंगापुर, 1981

गलेज़र बरने तथा एनस्लम, स्ट्रास, *दी डिसकवरी ऑफ ग्राउंडडिड थ्योरी,* एल्डाइन, षिकागो, 1967

लुण्डबर्ग, जॉर्ज, *सोषल रिचर्स,* लॉगमैन ग्रीन, न्यूयार्क, 1946

मेनहीम, हेनरी ली., *सोषिलाजिकल रिसर्च फिलोस्फी एंड मैथड्स,* दी डारसी प्रेस, इलयूनास, 1997

आग, एफ. ए., *रिसर्च इन दी ह्यूमनस्टिक सर्वे,* अमेरिकन कांसिल ऑफ लर्नड सोसाइटी, न्यूयार्क, 1928

पीयरसन, कार्ल, *ग्रामर ऑफ साईन्स,* जे.एम. डेन्ट एंड संस, लंदन, 1951

रेडमैन, पीटर, *गुड एस्से राइटिंग, ए सोषल साईन्स गाइड,* सेज, लंदन, 2001

सैलाटिज़ क्लोर, मैरी जहोदा, मार्टिन डयूटस्थ एवं स्टुअर्ट डब्ल्यू. कुक, *रिसर्च मैथड्स इन सोषल रिलेषन्स,* हाल्ट, राईनहार्ड विनस्टोन, 1976

स्टीफ़नसन, एम., "सोषल रिसर्च" इन *एन साइक्लोपीडिया ऑफ सोषल साईंसेंस,* खंड IX, मैकमिलन, लंदन, 1930

विलियमसन, जॉन. बी., डेविड ए. करैप एवं जॉन आर. डेलफन, *दी रिसर्च क्रैफ्ट : एन इंट्रोडक्षन टू सोषल मैथड्स,* लिटिल ब्राउन एंड कंपनी, बोस्टन, 1977

यंग, पालिन, बी., *साईंटिफिक सोषल सर्वे एंड रिसर्च,* प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1995